संधि

आजकल उतरते दिन की अशक्त होती धूप उसके घर के छोटे-से कंपाउंड के सामने वाले लकड़ी के पीले गेट पर थोड़ी देर के लिए ठिठकती है और फिर तेजी से रास्ते की

https://www.hindiadda.com/sandhi/

दूसरी तरफ खड़े मौलसिरी के बौने, छतनार पेड़ की ओर सरकती जाती है। इसके बाद दिन के ढलने में ज्यादा समय नहीं लगता। जैसे रात और दिन की संधि पर खड़ा है यह गेट। इसके एक तरफ निरंतर सिमटती हुई सुबह, संक्षिप्त होती दुपहरें हैं और दूसरी तरफ तेजी से घटती शामें और धीरे-धीरे लंबी खिंचती जाती रातें... वैसे भी सर्दी के दिन शुरू हो गए हैं। हवा में खुनक आ गई है। दोपहरें अलस और तापहीन। कितनी जल्दी समय गुजर रहा है... धूप के साथ मानसी भी गेट पर थोड़ी देर खड़ी रह जाती है। उसकी आँखें गेट पर रखे अपने बाएँ हाथ की उभरी नसों पर हैं - धूप में पारदर्शी और धड़कती हुईं! पहले इनमें नर्म परों वाली ढेर सारी खुशरंग तितलियाँ हुआ करती थीं... ये बात बहुत पहले की है। अब याद करने के लिए दिमाग पर खासा जोर देना पड़ता है उसे। बाहर नहीं, मौसम भीतर भी बदलता है निरंतर, वह इन दिनों महसूसती रहती है इस बात को शिद्दत से।

कैसी विडंबना है कि जिस घर में हर दिन समय से लौटती है, उसी में दाखिल होने का मन नहीं करता। हर कदम पर लगता है, रास्ता कुछ कदम और बढ़ जाय... मगर यह रास्ता अंततः उसे उसके घर तक पहुँचा ही देता है। कई बार वह दूसरी सड़क से घूम कर आती है, कई बार बहुत धीरे, छोटे-छोटे कदमों से भी। साथ ही अपनी घड़ी भी देखती जाती है - कहीं बहुत देर तो नहीं हो गई! कुछ दिन हुए, बस स्टैंड के पास वाले छोटे नाले पर वर्षों से टूटी पड़ी पुलिया भी दुरुस्त कर दी गई है। अब वह घर और जल्दी पहुँचने लगी है। बस से उसके साथ उतरने वाले दूसरे यात्री तेजी से अपने गंतव्य की ओर चल पड़ते हैं। साथ में वह भी। मगर कुछ दूर चल कर उसके कदम अपने आप धीमे पड़ जाते हैं। इन तेज चलते लोगों के लिए कहीं कुछ अच्छा इंतजार कर रहा होगा। उसके लिए घर के नाम पर तो बस ढेर सारी शिकायतें और कुछ जर्द दीवारें खड़ी हैं...

गेट खोल कर वह कंपाउंड के अंदर दाखिल होती है। लॉन की सूखी घास पर बाँस के ढेर सारे पत्ते बिखरे पड़े हैं। सूने गमलों की कतार के पीछे बगल की दीवार से सटे बोगनबेलिया में एक गुच्छा फूल - चटक लाल...! पीली पड़ती धूप में हल्के-हल्के काँपते हुए! उनकी तरफ देखते हुए मानसी फिर ठहर जाना चाहती है मगर अपनी माँ के खाँसने की आवाज सुन कर दरवाजे की ओर बढ़ जाती है। डुप्लीकेट चाभी से घर के अंदर दाखिल हो भीतर से दरवाजा बंद करते हुए वह माँ का बड़बड़ाना ना सुनते हुए भी सुनती रहती है। माँ बोल रही है - वही जो हमेशा बोलती है - जोड़ों का दर्द, मुँह में बना हुआ कड़वा स्वाद, सारा दिन दिल का घबराना... अपना बैग बिस्तर पर फेंक कर वह कपड़े, तौलिया ले कर बाथरूम में घुसती है। पूरा शहर उसके साथ अपनी धूल, शोर

और गंदगी के साथ घर में घुस आया है। इन्हें अपनी त्वचा से जितनी जल्दी हो सके उतार फेंकना होगा। शुक्र है नल का पानी दोपहर की धूप में अभी भी गरम है। गीजर तो जाने कब से बिगड़ा पड़ा है। कनेक्शन में कुछ प्रोब्लम होगा। इलेक्ट्रीशियन को बुलाना हर दिन रह जाता है। पिछला बरामदा भी महीना भर हुए, अँधेरे में डूबा रहता है।

माँ कह रही थी कंपाउंड से लगे गुलमोहर के नीचे रोज शाम चार-पाँच लफंगे बैठ कर जुआ खेलते हैं। कभी उन में आपस में मारपीट, गाली-गलौज भी होती है। एक दिन बीयर की खाली बोतलें इधर फेंकी थी। "कभी अँधेरे में इधर उतर आएँ तो हुआ! अंधों की तरह सारा दिन अकेली पड़ी रहती हूँ, कोई गला काट कर भी चला गया तो किसी को पता नहीं चलेगा!" माँ को रोते देख उसके भीतर जाने क्या घिर आता है। अवसाद के साथ खीज, झुँझलाहट... ना जाने किस पर! आँसू, उसाँसें, कराह... यह सब उसे वितृष्ण करते हैं। कभी-कभी उसे लगता है, लोग अपने दुख, तकलीफ में कम, दूसरों को अपराधबोध कराने के लिए ज्यादा रोना-धोना करते हैं। इन दिनों अक्सर ऐसी मनःस्थिति बनी रहती है। उठते-बैठते ढह पड़ने को जी चाहता है। जब भीतर इतनी टूटन हो, कितना मुश्किल होता है सहज बने रहना, सबसे निभाना! चेहरे पर मुस्कान चिपकाए सुबह से शाम तक अभिनय - खुद से भी और दूसरों के सामने भी।

आज कल सुबह आँख खुलते ही ख्याल आता है - एक और दिन! पूरे बारह घंटे - चलना, हँसना, बोलना... किसी कठपुतली की तरह! काठ की हँसी, काठ की बोली। बस काठ का मन नहीं, काठ की आँखें नहीं। असल मुसीबत इनसे है। जाने कैसे इस सूखी जमीन से इतना नमी बटोर लाती है! एक समय हुआ, कहीं खुद को निरापद पाती है तो बस नींद में, बिना कोई सपने वाली गहरी काली नींद - शुक्र है कि अभी कुछ समय की दूरी पर है यह दुनिया, इसके तमाम शोर-गुल, कारोबार। बीच में अंधकार की ऊँची, तरल दीवार है, नींद और चुप्पी भी... वह कस कर आँखें मूँदे रहती है। रात को थोड़ा और लंबा खींचने के लिए, दुनिया को परे धकेलने के लिए।

मगर उसकी हर कोशिश के बावजूद हर दिन सुबह अपने समय पर होती है। वह उठती है, माँ का कमरा साफ करती है - बेड पैन, बिस्तर... नीम अँधेरे कमरे में पेशाब की तेज बू के साथ माँ की गीली, उदास आँखें, अपने में सिमटी-सिकुड़ी अशक्त काया... सब कुछ बारिश के डबडबाये मेघ-सा उसके अंदर घिर आता है। बिस्तर, कपड़े तहाते हुए खुद को सायास जब्त करती है - रुलाई को उठा कर रखना पड़ेगा रात तक के लिए। अभी काम हैं - ढेर सारे! माँ, घर, नौकरी, दुनिया... माँ की निरंतर बड़बड़ाहट के बीच वह तेजी से हाथ चलाती जाती है। रुकने-ठहरने के लिए उसके पास जरा समय

नहीं। माँ को इस बात से भी शिकायत है - उसके पास अपनी माँ के लिए कभी समय नहीं रहता। हमेशा बाहर की ओर मन। इतना ही बोझ बन गई है उसके लिए तो विनती के यहाँ छोड़ आए। बिचारी तो बुला-बुला कर हार गई... वह सुनती है चुपचाप, कहीं से खुद को कुंद, निर्लिप्त बनाते हुए। भीतर का एक प्रांजल, स्पंदित हिस्सा अरसा हुआ, ऊसर हो गया है जैसे। अब ये बातें बस आवाजें है उसक लिए - अर्थहीन शोर! गहरी विरक्ति के बीच माँ के लिए रह-रह कर दुख भी होता है। एक द्वंद्व-सा हर समय भीतर बना रहता है।

दो परस्पर विरोधी मनःस्थिति में एक साथ जीना - विरक्ति और करुणा में! किसी की विवशता किसी और की जिंदगी की सबसे बड़ी विवशता बन जाय... हाथ-पैर की बेड़ी बनी रहे आजीवन! प्रेम, आत्मीय से आत्मीय संबंध - जब कुछ भी मजबूरी बन जाता है, अपने आप बोझ भी बन जाता है। अनायास उतार फेंकने का मन करता है। और मन की यही चाहना ग्लानि का गहरा दंश बन कर समय-समय परेशान करती है। जैसी भी है, माँ तकलीफ में है। मगर उसकी मदद नहीं की जा सकती। वो करने नहीं देगी! यह स्थिति और भी त्रासद है उसके लिए। आँखों के सामने डूबने वाला इनसान मदद के लिए किसी का बढ़ा हुआ हाथ नहीं थामेगा। वहम की एक पूरी दुनिया है उसकी। मकड़ी के जाले की तरह कई-कई परतों में बुनी हुई, भ्रांतियों का सघन गुंजल। अनगिन गाँठ, गिरह से भरी हुई। वह आजीवन उलझी है उसके रेशों में। छुटेगी नहीं कभी। उसी में तिल-तिल जीना और तिल-तिल मरना है उसे। और मानसी को... बस देखना! अंततः हर चीज के लिए दोष भी उसे ही दिया जाएगा। वह जानती है और इसके लिए कहीं से तैयार भी है। दूसरा कोई विकल्प भी तो नहीं उसके पास! जवाबदेही जिम्मेदारी उठाने वालों की ही बनती है। इल्जाम भी अक्सर उन्हीं के हिस्से आते हैं।

वास्तविकता से माँ का कुछ लेना-देना नहीं। जानना नहीं चाहती। अपनी खुशफहमियों और गलतफहमियों में निरंतर जी रही है। यह उनका अपना रचा स्वर्ग है, नर्क है। नियति से ज्यादा उनका चुनाव! मगर विडंबना यह है कि मरने वाला हमेशा अकेला कहाँ मरता है! डूबने वालों की तरह अपने साथ जाने क्या-क्या डुबो ले जाता है... मानसी जानती है, उनके आसपास निरंतर मरती कई चीजों में से एक वह भी है। अब वह जिंदा लोगों में खुद को नहीं गिनती। उसके डीएनए में घुला आनुवंशिक अवसाद उसकी सारी देह, आत्मा पर कालिख की तरह पुत गया है, अणु-अणु में रिस रहा है हर समय विष की तरह। उसे अपना सलीब उठा कर चलना पड़ेगा, जब तक चल सके।

माँ के इस कमरे में दिन के समय भी अँधेरा छाया रहता है। वह हर समय खिड़कियाँ बंद रखना चाहती है। कभी उसे हवा से परेशानी है तो कभी शोर से। मानसी जिद कर के रोज खिड़की खोलती है, थोड़ी धूप, हवा, आसमान के लिए। बंद कमरों में उसका दम घुटता है। इस समय पूरब की तरफ खुलने वाली खिड़की के परदे हटाते ही कमरे में जगमगाती धूप भर आती है। आकाश का रंग बदलने लगा है। बर्फिला नील... हवा में नए मौसम की खुनक, तीखी गंध है - घास के दूध की छींट-से नन्हें फूलों की, सूखती काई की। पड़ोस के घर के आँगन में तेल से चुपड़ा एक गोल-मटोल बच्चा रंग-बिरंगी कथरी पर सुबह की धूप सेंकने लिटाया गया है...। ताजे खिले सूरजमुखी-सा! उसके होंठ निरंतर हिल रहे हैं, जैसे दूध पी रहा हो... उसकी तरफ देखते हुए कुछ पलों के लिए वह खिड़की की ठंडी सलाखों से अपना चेहरा सटाये खडी रहती है। भीतर थिरते पानी-सा कुछ शांत हो आया है। बीच में बस छत की मुंडेर पर बैठी अकेली गौरैया की ठुनकती आवाज और हवा की सरसराहट... उसे अच्छा लग रहा है - इस तरह एकदम से अकेली हो आना, जैसे उसके और प्रकृति की असीम नीरवता के बीच और कहीं कुछ ना हो, उस नवजात की हल्की कुनमुनाहट के सिवा!

माँ थोड़ी देर के लिए चुप हो कर चाय पीने लगी थी। मगर उसे इस तरह खिड़की पर खडी देख कर फिर शुरू हो गई थी - विनीता का कल फोन आया था। कह रही थी आज तुमसे बात करेगी। माँ मैं उसकी भी हूँ, एकदम से लावारिस भी नहीं कि कोई कुछ भी करे और वह चुप रह कर देखती रहे। नाश्ता के बर्तन, जूठे कप, गंदे बिस्तर आदि समेट कर कमरे से निकलते हुए उसने बस अपना सर हिलाया था। ऐसे में बहुत मुश्किल से वह अपना धैर्य बनाए रहती है। और करे भी तो क्या! एक बार हफ्ते भर के लिए विनीता माँ को अपने घर ले गई थी मगर चौथे ही दिन हजार बहाने बना कर लौटा गई। माँ का बड़ा मन था अपनी दुलारी बेटी के घर थोड़े दिन और ठहरने का। उसने किसी तरह उन्हें बहला-फुसला कर शांत किया था। कैसे बताती कि उसके दामाद को हर वक्त उसका उनके निजी मामलों में टाँग अड़ाना पसंद नहीं आता। बच्चों को उसकी देह से उठती दुर्गंध से घिन आती है, विनीता के पास चौबीस घंटे उसके पास बैठ कर उसकी शिकायतें सुनने का समय नहीं... फिर उनका घंटों चलने वाला पूजा-पाठ! घर में अक्सर मेहमान आते हैं, पार्टियाँ होती हैं, उन्हें बड़े लोगों में उठना-बैठना पड़ता है। कुछ ही दिनों में माँ, उसकी आदतें, व्यवहार उन लोगों लिए 'ह्यूज एमबरसमेंट' बन गया था।

वह जानती है, विनीता फोन पर उससे क्या बात करने वाली है। माँ के लिए खूब चिंता जताएगी, अपनी विवशता बताएगी और उसे ढेर सारी नसीहतें दे कर फोन रख देगी।

हाँ एक बार यह भी पूछेगी कि उसे किसी बात की जरूरत तो नहीं? जरूरतें... क्या-क्या बताए और कितना! इस घर की हालत क्या है, क्या विनीता को खुद पता नहीं! उसका यूँ अनजान बन कर पूछना भी मानसी को अपमानजनक लगता है। माँ अर्से से बीमार है, बाबूजी का छोटा-सा पेंशन और उसकी हाल में लगी अस्थायी नौकरी। डॉक्टर, दवा के बिल में ही सब निकल जाता है। फिर हर दो-तीन महीने में अस्पताल का दौरा। तरह-तरह के टेस्ट...

बीच में बाबूजी की बीमारी और मृत्यु के बाद एक लंबे समय तक नौकरी छोड़ कर उसे घर में बैठना पड़ा था। माँ अकेली थीं। हमेशा की तरह बीमार भी। जब कुछ महीनों के लिए एक डे नर्स का बंदोबस्त हुआ तो उसने घर से बाहर कदम निकालने की हिम्मत की। एक साल हुए लेक्चरर बेसिस पर एक स्थानीय कॉलेज में पढ़ा रही है। नेट-सेट ना कर पाने के कारण पक्की नौकरी पाने की भविष्य में कोई उम्मीद नहीं। पीएचडी भी रह ही गया है। इधर कुछ ही दिनों में होम नर्सों के संवेदनहीन, शुष्क व्यवहार से सबका जीना मुहाल हो गया था। थोड़े-से अंतराल में कई नर्स बदलने पड़े थे। इनके लिए अक्सर बीमार व्यक्ति कोई मनुष्य ना हो कर सिर्फ एक पैसे कमाने का जरिया होता है। उनकी तकलीफ से इन्हें कोई लेना-देना नहीं होता। बैठ कर वे या तो मोबाईल पर बात करती रहती है या घड़ी देखती रहती है कि कब उनके गिनती के घंटे पूरे हों और वे अपना पैसा ले कर घर जाय। कुछ समय तक बर्दाश्त करने के बाद वह एक को हटा कर दूसरी को ले आती। मगर नतीजा वही ढाक के तीन पात! अंतिम वाली को हटाने के बाद से उसे लगने लगा है, यह नौकरी भी वह ज्यादा समय तक कर नहीं पाएगी। एक तरफ घर की बिगड़ती हालत है, दूसरी तरफ डिपार्टमेंट की गंदी राजनीति। वह झेल रही है, सतर खडी है मगर सतह पर बने रहने की लाख कोशिशों के बावजूद भीतर से कहीं बिखरने लगी है। आगे कब तक और कहाँ तक यह सब ले पाएगी नहीं जानती, धैर्य का तटबंध टूटने की कगार पर है। इस तरह टुकड़ों में बंट कर कब तक जिया जा सकता है।

उसकी कोलिग अमिषा अक्सर उससे अपना टिफिन शेयर करते हुए लंच टाइम में पूछती है, ऐसे कब तक मानसी! अड़तीस की हो गई हो... उसके पास अमिषा के प्रश्नों का कोई जवाब नहीं होता। खाना बीच में छोड़ कर उठ खड़ी होती है। अमिषा भी शायद यह बात समझती है। उसका हाथ पकड़ कर वापस बैठा लेती है - ठीक, कुछ नहीं पूछती। खाना खा ले। इस पूरे कॉलेज में अमिषा का ही सहारा है। वरना यहाँ वह बिल्कुल अलग-थलग पड़ गई है। कुछ महीनों से विभाग प्रमुख डॉक्टर रमा का अपने प्रति अजीब-सा व्यवहार वह समझ नहीं पा रही। उसने खुद ही बढ़ कर उसे फिर से

नौकरी करने के लिए प्रेरित किया था। तब शायद वह उसके लिए एक बेचारी-सी औरत थी जिसकी मदद करते हुए उसे अपने बड़प्पन का एहसास होता था। मगर जैसे ही प्रिंसिपल ने सबके सामने उसकी कई बार तारीफ कर दी, विद्यार्थियों ने फेवरिट टीचर के रूप में उसका नाम ले लिया, वह तिक्त हो उठी।

ऊपर से युनिवर्सिटी सेमिनार में उसे बुलाया जाना आग में घी का काम किया। उन पत्रिकाओं में उसके लेख, समीक्षाएँ छप रही हैं जहाँ से उसकी जाने कितनी रचनाएँ लौटा दी गई थीं! विभाग के कार्यक्रमों में बाहर से आने वाले साहित्यकार अतिथि सबसे पहले उससे मिलने की ख्वाहिश जाहिर करते हैं, उससे घुल-मिल कर बोलते-बतियाते हैं... इन बातों ने जाने कहाँ से उसे असुरक्षित कर दिया था। जिस पर उसने एक दिन दया की थी वह आज उसे चुनौती देने लगी! उसे - डॉक्टर रमा को! डॉक्टर रमा - एम फिल, पीएचडी, एचओडी, संत मेरी कॉलेज... उसे भी ऐसों से खूब निपटना आता है। अब तो वह मौका ढूँढ़ती रहती है उसे किसी ना किसी तरह अपमानित करने का। कभी क्लास में स्टूडेंट्स के सामने झिड़क देती है तो कभी स्टाफ रुम में अपमानित करती है।

लेक्चर बेसिस पर होने की वजह से उसे कॉलेज में किसी तरह की सहूलियत हासिल नहीं। स्टाफ रूम में बैठने के लिए उसे एक कुर्सी तक नहीं दी गई है। कोने में रखे एक स्टूल पर बैठना पड़ता है या जब कोई टीचर क्लास लेने जाता है, तब उसकी कुर्सी पर जिसे उनके आते ही खाली कर देनी पड़ती है। लायब्रेरी, दफ्तर, हर जगह लेक्चर बेसिस पर काम करने वाले टीचरों के साथ अभद्र व्यवहार किया जाता है। उन्हें दिहाड़ी मजदूरों से ज्यादा नहीं समझा जाता। कई बार अपनी तनख्वाह माँगने पर उसे कैशियर से अपमानित होना पड़ा है। कभी वह उसका लंच टाइम होता था तो कभी कोई और जरूरी काम। प्रिंसिपल के ऑफिस के बाहर मिलने के लिए देर तक खड़े रह कर भी इजाजत नहीं मिली है। जान-बूझ कर अनदेखा कर दी गई है। डॉक्टर रमा की देखा-देखी स्टाफ रूम में दूसरे टीचर भी उससे बोलना छोड़ चुके हैं। बी ए फाइनल के कुछ लगातार क्लास बंक करने और फेल करने वाले बड़ी उम्र के स्टूडेंट्स डॉक्टर रमा के कहने पर उठते-बैठते हैं। इन दिनों वे बात-बात पर उसकी शिकायत ले कर डॉक्टर रमा या प्रिंसिपल के पास पहुँचते हैं। क्लास के दौरान भी उनका उपद्रव जारी रहता है। कई बार उनके उद्दंड, अभद्र व्यवहार से आहत हो कर वह लायब्रेरी के किसी निर्जन कोने में बैठ कर रो चुकी है। बहुत उम्मीद और हौसला ले कर यहाँ आई थी मगर अब लगने लगा था जैसे पूरी दुनिया ही उसके खिलाफ हो गई है। जाने क्यों...

साल में छोटी-छोटी कई परीक्षाएँ होती हैं। डॉक्टर रमा एक प्रश्न-पत्र उससे दस-दस बार सेट करवाती है, हर बात में गलतियाँ निकालती है। फाइल में उसकी उपस्थिति जाँचते हुए उसके लेक्चरों की संख्या को ले कर उससे अपमानजनक प्रश्न भी पूछ चुकी है। वो एम ए में उसकी सहपाठी थी और मानसी उसे दरकिनार कर युनिवर्सिटी में प्रथम आई थी, इस बात के लिए शायद डॉक्टर रमा उसे आज भी माफ नहीं कर पाई थी। हर कदम पर रुतबे में उससे बड़ी होने का अहसास दिलाती रहती है। अब कई दिनों से मानसी यह नौकरी छोड़ देने पर गंभीरता से विचार करने लगी है। यह सब और सहता नहीं।

रोज घर से निकलते हुए उसका एक मन पीछे पड़ा रह जाता है तो एक मन इन अँधेरी गलियों और कराहते कमरों से साँकल छुड़ा कर भाग जाना चाहता है- बहुत दूर। घर में उदासी है, सन्नाटा है और है माँ की अंतहीन शिकायतें। बाहर कुछ नहीं मगर भीड़ है, शोर है, जिंदगी की गहमा-गहमी है। वहाँ वह थोड़ी देर के लिए खुद को भूल सकती है, खो सकती है सड़कों पर बहते हुए इनसानी सैलाब में। बस में जिस दिन उसे बैठने के लिए जगह मिल जाती है और अगर वह किस्मत से खिड़की वाली सीट हो तो वह पूरे रास्ते बच्चों की-सी उत्सुकता से खिड़की से बाहर एक-एक चीज देखती रहती है। फुटपाथ पर बिकते सामान, फेरी वाले, दुकान के विंडोज पर सजे पुतले, हाँफते, दौड़ते-भागते लोग... हवा में धूल है, धुआँ है, सड़क किनारे खुले चूल्हों में पकते-छनते पकवानों की खुशबू, बेला की ताजी वेणियों और छोटे-छोटे मंदिरों में जलती अगरबत्तियों की सुगंध... लोग चल रहे हैं, बोल-बतिया रहे हैं, झगड़ रहे हैं - जी रहे हैं! यहाँ सब कुछ सुंदर ना हो, जिंदगी तो है!

जिंदगी... वह शब्द को मन ही मन बार-बार दुहराती है। ठीक कब से यह अपना माने खोने लगी! इन दिनों उसके भीतर एक निरंतर संवाद चलता रहता है - खुद से ही। ना चाहते हुए भी वह बार-बार लौटती है पीछे की ओर। यह रास्ता एक कदम भी समतल नहीं। नागफनी के जंगल-सा है। जाने वह कैसे अब तक इस पर चलती रही... शून्य पड़ गए अपने पाँव के तलवों को महसूस करने की कोशिश करते हुए वह सोचती है। याद कुहासे की तरह हर पल छटती, गहराती है। सब कुछ क्षणांश के लिए दिखता है फिर विस्मृति के कोहरे में खो जाता है... विनीता - उसकी छोटी बहन बहुत सुंदर है, गोरी-चिट्टी और स्मार्ट। स्कूल में डांस, वाद-विवाद, संगीत - हर प्रतियोगिता में पुरस्कार जीत कर लाती है। दूसरी तरफ वह बस सर झुका कर स्कूल जाती-आती है। एक कोने में बैठ कर चुपचाप पढ़ाई करती है। ना 'हाँ' बोलना आता है उसे ना 'ना'। स्कूल में बच्चे उसे बहनजी कह कर चिढ़ाते हैं। यह जान कर कि दोनों सगी बहनें हैं,

लोग हैरत में पड़ जाते हैं। कहाँ सुंदर, स्मार्ट विनीता, कहाँ साँवली, साधारण वह! विनीता हमेशा माँ की फेवरिट। उसके जन्म के समय घर की माली हालत खराब थी। माँ की ढंग से कोई देख-भाल नहीं हो पाई थी। मगर विनीता के समय बाबूजी की अच्छी नौकरी लगी थी। माँ ने खूब केसर-दूध पिया था।

तभी तो विनीता का यह रंग-रूप! उठते-बैठते माँ यह सब कहते नहीं अघाती थी। विनीता ये, विनीता वो... विनीता मलाई वाला दूध नहीं पीती, विनीता बैगन नहीं खाती, विनीता को ठंड लग जाएगी... मगर मानसी की कोई पसंद-नापसंद नहीं। वह सब खाती है, कुछ भी पहन लेती है। उसे सर्दी भी नहीं लगती। ठंडे पानी से नहा लेती है, कपड़े धो लेती है। अच्छी लड़की है, पड़ोसी कहते हैं। माँ कहती है, विनीता जैसी चंट नहीं। वह अपने पड़ोसियों की अपेक्षाओं पर खड़ी उतरना चाहती है, अपनी माँ को गलत सिद्ध करना चाहती है। हर समय अच्छी लड़की बने रहने की कोशिश में वह खुद क्या है, क्या चाहती है, भूल ही गई है। बचपन में गली में लट्टू नचाते, गुल्ली-डंडा खेलते लड़कों को देख कर उसका मन ललचाता, आइस-पाइस या कित-कित खेलती लड़कियों को हसरत से देखती हुई वह चुपचाप माँ के पीछे-पीछे शिव जी के मंदिर में जल चढ़ाने जाती। विनीता की नजर बचा कर उसने कई बार उसका कलर बॉक्स खोल कर देखा है, रंग चुरा कर कागज रंगे हैं और इसके लिए डाँट भी खाई है। माँगे की खुशियाँ कब तक काम आतीं...

बाबूजी चुप रहते थे। माँ के सामने उन्हें कभी बोलते नहीं सुना। मगर उनकी आँखों में उसके लिए हमेशा कुछ अच्छा-सा होता था। जाने क्या! उनके आसपास बने रहने मात्र से मानसी कहीं से परों-सी हल्की हो आती थी। वे पल उसके जीवन के कुछ अच्छे पलों में से थे। उन्हीं बाबूजी की आँखों से वह धीरे-धीरे एक समय खो गई थी। उन्हें अल्जाइमर- भूलने की बीमारी हो गई थी! उस दुख को वह आज भी जीती-महसूसती है। अंतिम दिनों में बाबूजी की वे खाली, भावहीन आँखें, गूँगी जुबान, हड्डी का ढाँचा बन गया शरीर - सब कुछ दुःस्वप्न की तरह उसे समय-असमय आ घेरता है, दीमक की तरह भीतर ही भीतर खाता जाता है।

उनकी मौत ने माँ को बहुत अकेला और असुरक्षित कर दिया था। अचानक से ना प्रिय बेटी, ना पति का साथ। बस मानसी का सहारा जिस की काबिलियत पर उसे कभी भरोसा नहीं रहा। उसे अचानक रोग और मृत्यु-भय ने आ घेरा था। हर पल वह इस आशंका से त्रस्त रहती कि उसे कोई बड़ी बीमारी हो गई है। थोड़ी खाँसी होने पर भी उसे लगता हो ना हो उसे टीवी हो गई है। रात-दिन बैठ-बैठ कर अपने शरीर का मुआयना करती रहती, इस-उस तकलीफ की शिकायत करती रहती। मानसी उसे डॉक्टर के

पास ले जा-जा कर थक गई है। डॉक्टर भी अब उनकी बातों को गंभीरता से नहीं लेते। कहते हैं, माँ हाइपोकोनड्रियाक है। उसे अपने बीमार होने का वहम है। वहम का कोई ईलाज नहीं। मन के वहम साइकोसोमाटिक - शारीरिक बीमारी का भी शक्ल ले कर उजागर होते हैं। अक्सर विटामिन की गोलियाँ दे कर वे माँ को टरका देते। शायद सचमुच माँ के साथ यही सब हो रहा था। कभी रातों को बुखार चढ़ आता है, दिल की धड़कने और नब्ज तेज रहती हैं, तो कभी त्वचा ठंडी और पसीने से भीगी हुई।

जो बात सबसे ज्यादा मानसी को परेशान करती है वह है माँ का हर काम या बात को बार-बार दोहराना। वह दिन में पचास बार हाथ धोती है, जब चल-फिर पाती थी तब रातों को उठ-उठ कर दरवाजे-खिड़कियाँ बंद है कि नहीं, देखती रहती थी। हर समय एक अंजाने डर और आतंक में जीने लगी थी वह। उसे लगता था, कुछ बहुत बुरा होने वाला है उसके साथ। आने वाली आपदा को टालने के लिए वो अजीबो-गरीब हरकतें करती। उसे वहम हो गया था कि हर कोई उसका दुश्मन है और उसके खिलाफ कोई षड्यंत्र रच रहा है, उसके पीठ पीछे उसकी बुराई कर रहा है। मानसी अक्सर उसे दीवार से कान लगाए खड़ी पाती या पर्दे के पीछे छिप कर खिड़की से बाहर झाँकते। डर, खीज और गहरे अवसाद में वह हर समय रहने लगी थी। सब सुन कर एक काउन्सलर ने फ्रेक्स्ट फिफ्टी की दो गोलियाँ सुबह-शाम लिखते हुए निर्लिप्त भाव से कहा था, डिप्रेशन! ओबसेसिव-कॉमपल्सीव डिसऑर्डर... वह सुन कर सन्न रह गई थी। अब यह सब क्या है!

इन दिनों माँ का सबसे बड़ा डर है कि कहीं वह शादी कर के अपना घर ना बसा ले। फिर उनका क्या होगा। कितना भी नकार में जीये, कहीं से जानती है, मानसी के सिवा उसकी देख-भाल करने वाला और कोई नहीं। रात-दिन अच्छी लड़कियों के उदाहरण उसके सामने रखती है - फलाँ-फलाँ की बेटी ने आजीवन शादी नहीं की, एक बेटे की तरह अपने बूढ़े माँ-बाप की देख-भाल की... आजकल की लड़कियाँ घर-गृहस्थी में अपना जीवन नहीं खपाती, पढ़ती-लिखती है, अपना कैरियर बनाती है... चालीस-चालीस साल तक अविवाहित रहती है...

ऐसी बातें करते हुए माँ कितनी दयनीय लगती है। मानसी सुनते हुए खीज, करुणा के मिले-जुले भाव से भर आती है। कभी जी में आता है, माँ के दोनों हाथ पकड़ कर उसे आश्वासन दे कि वह निश्चिंत रहे, वह उसे छोड़ कर कहीं नहीं जाएगी तो कभी जी में आता है, सब कुछ छोड़-छाड़ कर भाग जाय - कहीं भी, किसी के भी साथ! अच्छी लड़की, जिम्मेदार लड़की का किरदार निभाते-निभाते वह थक गई है। अब वह सिर्फ वही बन कर जीना चाहती है जो वह वास्तव में है - एक साधारण इनसान! उसे दुख

होता है, गुस्सा आता है, नफरत होती है... एक कामनाओं से भरे मन के साथ एक जीवित शरीर भी है उसका! उस में भूख है, लालच है, आम मानवीय इच्छाएँ हैं... वह पार्क में खेलते बच्चों को देखती है, हाथ में हाथ डाले साथ-साथ चलते जोड़ों को। शादी के मौसम में घर के सामने से गुजरती बरातों की रोशनियाँ, नाचती-गाती भीड़, सेहरे में छिपे दूल्हे के चेहरे की एक झलक... सब कुछ उसे उदास कर जाती है। औरत होने के हर सुख से वह वंचित है! छत के किसी अँधेरे कोने में खड़ी वह दूर किसी शादी में लाउडस्पीकर पर बजते फिल्मी गीत सुनते हुए आकाश को तकती रहती है। सालों पहले कुछ लड़के उसे देखने आए थे और अंततः उन्हीं में से एक उसकी छोटी बहन को ब्याह ले गया था। यह सब कुछ बहुत अपमानजनक था उसके लिए। वह दिनों कमरे में पड़ी-पड़ी रोती रही थी। सोचते हुए वह देर तक छत पर खड़ी रह जाती है और फिर माँ ही उसे डाँट कर नीचे बुला लाती है - कब तक खुले सर आसमान के नीचे खड़ी रहेगी! ओस गिर रही है... उसे अब शादी-ब्याह से चिढ़ हो गई है। 'शोर मचाते रहते हैं जंगलियों की तरह, रात-रात भर सोने नहीं देते। पूरा शहर ही फेरे डाल रहा है! दुनिया में जैसे और कोई काम ही नहीं...'

मानसी के पास बहुत काम है - घर के काम, माँ की देखभाल, नौकरी... फिर भी बचा रह जाता है ढेर सारा समय... समय - आकाश को तकते रहने का, करवट बदलने का, खिड़की पर खड़े रहने का! भीतर एक सन्नाटा है - निरंतर बोलता हुआ, उसाँसें लेता हुआ, जीवित... वह हर क्षण एक चीखती हुई चुप्पी ढोती है, जीती है साँस-साँस।

बहुत हिम्मत कर के उसने इस बार पीएचडी करने का निर्णय लिया है। डॉक्टर पार्थसारथी के कहने पर। डॉक्टर पार्थसारथी से वह एक स्थानीय पुस्तक मेले में मिली थी। उससे पहले उन्हें वह केवल नाम से ही जानती थी। कोई परिचय नहीं था। जाने उनके कहने में क्या था, वह अनायास मान गई थी और अब अपने इस निर्णय पर खुश भी थी। लग रहा था, जीने की एक वजह मिल गई है।

अपने शोध के सिलसिले में इन दिनों अक्सर डॉक्टर पार्थसारथी से मिलना होता है। शहर के बाहरी हिस्से में उनका छोटा-सा कॉटेज है, खुले बरामदे और फूलों की छोटी-छोटी क्यारियों से भरा हुआ। अक्सर घर के पिछवाड़े किचन गार्डेन में काम करते मिल जाते हैं। दिल की बीमारी की वजह से समय से पहले नौकरी से अवकाश ले चुके हैं। कई साल पहले। घर में कोई नहीं। निःसंतान विधुर हैं। पत्नी की मृत्यु बहुत पहले हो चुकी है। पहली बार उनसे मिल कर मानसी को लगा था, एकांत भी सुंदर हो सकता है। डॉक्टर पार्थसारथी की आँखों की तरह... वहाँ टूटा हुआ इंद्रधनुष है, बुझते सितारों की मद्धिम टिमक है, एक उदास नदी का तरल फैलाव है... किसी बहुत

पुरानी ईमारत की तरह है उनका व्यक्तित्व। समय जिसके इर्द-गिर्द अपने सारे विगत वैभव के साथ अडोल खड़ा है।

एक दिन उन्होने ही कहा था, रचना सीखो! अपनी उदासी, दुख और एकांत को सिरजना सीखो! मौन का गीत, वैराग्य का महारास... न होने में सब कुछ है, आँख खोल कर देखो तो... उस दिन जाने उसने क्या देखा-महसूसा था, देर तक अनमनी बनी रही थी। लगा था, अकेलेपन में एक प्रच्छन्न-सा साथ है- नीरव संगीत, अमूर्त स्पर्श, देहातीत स्वप्न... खूब डूब कर जिया था उस दिन उसने अपने आप को, अपने गूँजती निस्संगता को! इसके बाद कारण-अकारण वह बार-बार जाती रही है डॉक्टर पार्थसारथी के पास, इस बात की परवाह किए वगैर कि वे उसके बारे में क्या सोच रहे होंगे। एक अजीब-सा यकीन था, एक तरह की गट फीलिंग कि अगर वह बिन बुलाए उन तक चली आती है तो वे भी बिन कहे उसका इंतजार करते होंगे। कभी-कभी रंगीन काँच की खिड़कियों से जड़े कॉटेज के पिछले बरामदे में चुपचाप बेगम अख्तर की गजलें सुनते हुए दोनों पूरी दोपहर बिता देते हैं तो कभी फूलों की क्यारियाँ सींचते हुए डॉक्टर पार्थसारथी उसके शोध संबंधी सवालों के जवाब देते रहते हैं। चाय वे हमेशा खुद ही बनाते, अदरक-तुलसी वाली! कहते, मुझसे अच्छी चाय तुम क्या, कोई नहीं बना सकता, शर्त लगा लो। कितनी किताबें थीं उनकी लायब्रेरी में! आठ-दस अलमारियाँ भर कर! मानसी कई बार मजाक में उनसे कह चुकी थी, आप अपनी ये सारी किताबें मुझे दे जाइएगा... सुन कर वे मुस्करा कर रह जाते थे - देने को तो मैं बहुत कुछ दे जाऊँ, तुम ले सकोगी? जाने मेरे बाद इनका क्या होगा... ऐसा कहते हुए उनके चेहरे पर क्षण भर के लिए विषाद घिर आता। मानसी को पता था, अपनी किताबों, फूल की क्यारियों और तस्वीर के पुराने अल्बमों से उन्हें कितना लगाव था। तस्वीरें अधिकतर उनकी मृत पत्नी श्रावणी की थीं जिन्हें उन्होने जान से अधिक सम्हाल कर रखा था। अक्सर कहते थे, वो जीवित रहती तो शायद मुझे कभी पता नहीं चलता उससे इतना प्यार करता हूँ। कभी-कभी किसी के होने का एहसास उसके ना होने पर होता है! मेरे जीवन में ना होना ही उसका होना है...

मानसी डॉक्टर पार्थसारथी के जीवन में बहुत यत्न से सुरक्षित रखी गई उस खाली कोने की परिधि से बाहर खड़ी होती है, उस थोड़ी-सी जगह में जो इस रिक्तता के बाद बची रह गई है। अतिक्रमण की चेष्टा उसने कभी नहीं की। सीमाओं का सम्मान उसने हमेशा से किया है। बस उम्मीद की एक छोटी-सी लौ के सहारे कि किसी पर हृदय का पूरा प्रेम न्योछावर कर देने के बाद भी कहीं थोड़ा-सा प्रेम बचा रह जा सकता है, किसी

प्याली के तलछट पर पड़े कुछ बूँद पानी की तरह... बस इतना कि उससे प्यास से पपड़ाए होंठ भीग जाएँ, भीतर का कोई बंजर कोना तर हो आए...

डॉक्टर पार्थसारथी ने ही एक बार कहा था, एक सफरिंग हीरो सिंड्रोम होता है - लोगों को दुख झेलने में मजा आता है। वे इसी में अपनी महानता देखते हैं। तुम्हें लगता है, तुम हर एक के लिए जिम्मेदार हो, सिवाय अपने। थोड़ा-सा प्यार खुद से भी करना सीखो। जो खुद से प्यार नहीं कर सकता, वह किसी से प्यार नहीं कर सकता। यकीन मानो, तुम्हारा होना बहुत माने रखता है। तुम लाखों गत-आगत जीवन का अटूट हिस्सा हो, जीवित शृंखला की कड़ी हो! यहाँ कोई अकेला नहीं और हर कोई अकेला है। इस जिंदगी में तुम्हारा हिस्सा है, बहुत छोटा-सा ही सही। लाखों तारों में एक तारा, दीये की पांत का आखिरी दीया, पारे-सी चमकती हँसी का कोई टुकड़ा... सुन कर उसे अच्छा लगा था और खूब रोना भी आया था। मगर उसके बाद उसने डॉक्टर पार्थसारथी से खूब बहस की थी। खुद को झुठलाने की, नकार में जीने की शायद उसे आदत पड़ गई थी - खुद से आगे अपने अपनों को रखना कभी गलत नहीं हो सकता! अंत में जाने क्यों गुस्से से भर कर चाय का कप पटक कर उठ आई थी। अगर और थोड़ी देर ठहरती, निश्चित ही पकड़ी जाती।

मगर फिर उस दिन पूरी रात सो नहीं पाई थी। क्या डॉक्टर पार्थसारथी ने वही नहीं कहा था जिसे ना कह पाना उसके अब तक के जीवन की सबसे बड़ी त्रासदी रही थी! सुबह होते-होते उसने सोचा था, नौकरी छोड़ देगी, कुछ ट्यूशन कर लेगी। डॉक्टर पार्थसारथी ने कहा था, मेरी लायब्रेरी तुम्हें दिया। इस घर में भी बहुत सारी जगह है, मैं एक कमरे में पड़ा रहता हूँ, जिस तरह चाहो इस्तेमाल करो।

उसने विनीता को फोन करके माँ को कुछ समय के लिए अपने पास ले जाने के लिए कहा था। उसे अपने शोध के सिलसिले में बाहर जाना पड़ेगा। विनीता ने सुन कर पहले खूब सारे बहाने बनाए थे, अपनी मजबूरियाँ गिनाई थी। मगर वह अपनी बात से टस से मस नहीं हुई थी। आखिर रो-झींक कर वह माँ को अपने यहाँ ले जाने को तैयार हो गई थी। सुन कर माँ खूब खुश हुई थी। मानसी ने कुछ दिन पहले अपनी नौकरी से इस्तीफा दे कर उसकी यात्रा की सारी तैयारी कर दी थी। जिस दिन विनीता अपने पति के साथ माँ को लेने आने वाली थी, एक डे केयर नर्स को घर में रख कर वह अपना थोड़ा-सा सामान ले कर निकल पड़ी थी। वह नहीं चाहती थी विनीता और उसके पति से उसका सामना हो। उसे देख कर फिर ना जाने कौन-सा नया बहाना उन्हें सूझने लगे। फिजूल के सवालों से भी वह बचना चाहती थी। अमिषा को वह सब कुछ बताना चाहती थी मगर वह शहर से बाहर थी और उसका फोन भी बंद आ रहा था।

दोपहर के करीब डॉक्टर पार्थसारथी के कॉटेज में पहुँच कर उसने देखा था, कॉटेज खाली पड़ा है और एक ट्रक में कॉटेज का सारा सामान लदा हुआ है। पूछने पर पता चला था, डॉक्टर पार्थसारथी का निधन तीन दिन पहले दिल का दौरा पड़ने से हो गया था। उनके रिश्तेदारों ने उनके पैतृक गाँव में ले जा कर उनका क्रिया-क्रम कर दिया था। आज उनका भतीजा उनका सारा सामान ले कर जा रहा था। सुन कर मानसी निर्वाक खड़ी रह गई थी। ट्रक धूल उड़ाती हुई चली गई थी। कुछ देर खड़ी रहने के बाद उसने बढ़ कर कॉटेज का गेट बंद किया था। जाते हुए उन लोगों ने गेट ठीक से बंद नही किया था। कुछ बकरियाँ क्यारियों में घुस कर फूल के पौधे चबा रही थी। गेट के पास ही उसे तस्वीरों का एक पुराना अल्बम पड़ा हुआ मिला था। डॉक्टर पार्थसारथी और उनकी पत्नी श्रावणी की तस्वीरों का अल्बम। धूल झाड़ कर बड़े यत्न से मानसी ने उसे अपने बैग में रख लिया था।

घर पहुँचते-पहुँचते उसे डे केयर नर्स का फोन मिला था - माँ को लेने कोई नहीं आया था। माँ घर पर ही थी। सुन कर वह कुछ देर के लिए उतरती धूप के साथ गेट पर ठिठकी खड़ी रह गई थी। दिन खत्म होने की कगार पर था, रात की स्याही फिजाओं में घुलने लगी थी। धुंध की एक महीन चादर क्षितिज पर तेजी से उतर रही थी। एक गहरी साँस ले कर वह कुछ पल बाद अंदर दाखिल हो गई थी। घर के अंदर से माँ के निरंतर खाँसते हुए बड़बड़ाने की आवाज आ रही थी।

वह हमेशा की तरह अपने दुर्भाग्य और उसे कोसे जा रही थी। उसके आते ही डे केयर नर्स चली गई थी। उसके पीछे घर का दरवाजा अंदर से बंद करते हुए मानसी ने देखा था, शाम की अशक्त होती धूप इतनी ही देर में गेट से उतर कर रास्ते के दूसरी तरफ खड़े मौलसिरी के बौने, छतनार पेड़ के पीछे चली गई थी। सर्दी की शाम और तेजी से गिर रही थी। चारों तरफ कुहरीला अँधेरा घना हो कर घिर आया था। अपनी जलती हुई पलकों को भींचते हुए उसने सोचा था, फिलहाल रोने के लिए उसे रात का इंतजार करना होगा। अभी तो निबटाने के लिए कई काम पड़े हैं। अंदर अपने कमरे से माँ उसका नाम ले कर अब भी पुकारे जा रही थी। एक प्रच्छन्न आश्वस्ति और गहरा रिक्तता बोध लेकर वह मुड़ गई थी। उसने एक सपना देखा था। सुंदर सपना! वह सपना टूट गया मगर... आँखें तो हैं! वह अपनी पलकें जल्दी-जल्दी झपकाती है - बस इतना-सा पाना! खोना! उसका हिसाब कैसे हो...! फिलहाल वह अपनी दुनिया में लौट आई है, अपने चिर परिचित पिंजरे की सुरक्षा में। उसने निःशब्द चलते हुए रात के निविड़ अंधकार को अपने भीतर निर्बाध उतरने दिया था। अब इससे कोई झगड़ा नहीं। संधि हो गई है।